चरैवेति चरैवेति

Keep Moving Keep Moving

25 सितंबर 2017 को पं. दीनदयाल उपाध्याय का शताब्दी वर्ष पूर्ण हो गया। 25 सितंबर को दूसरी शताब्दी का दूसरा वर्ष प्रारम्भ हो गया। शताब्दी के रूप में मनाया गया उनका 101वां वर्ष, बहुत उत्प्रेरक एवं सक्रियता वाला रहा।

इस वर्ष में दीनदयालजी के विचारों का जो मंथन हुआ उनमें से कुछ मोतियों को चुनकर इस पुस्तक में पिरोया गया है, विदेश मंत्रालय के अधिकारियों ने इसके लिए जो परिश्रम किया है, उसके लिए वो बधाई के पात्र हैं।

इस पुस्तक में संजोये गये उद्धरणों का विवरण बहुत बडा है। एकात्म मानवदर्शन की आंतरिक परतों से इन्हें प्राप्त किया गया है। चतुःपुरुषार्थो धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की आंतरिक प्रक्रियाओं को ये उद्धरण उजागर करते हैं।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पाठकों के लिये यह प्रकाशन बहुत सार्थक सिद्ध होगा। दीनदयालजी को नमन करते हुए मैं इस उद्धरण संग्रह को आप लोगों की सेवा में प्रस्तुत करती हूं।

सुषमा स्वराज

– सुषमा स्वराज

एकात्म मानववाद

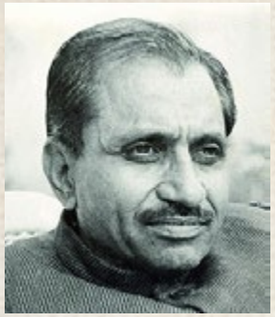

परिचय

पं. दीनदयाल उपाध्याय का बचपन बहुत ही विकट स्थितियों में बीता, तो भी वे सदैव एक मेधावी छात्र के रूप में रेखांकित हुए। द्वि-राष्ट्रवाद की छाया ने जब भारत की आजादी की लडाई को आवृत्त् कर लिया था, तब 1942 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन प्रारंभ किया। वे उत्तम संगठक, साहित्यकार, पत्रकार एवं वक्ता के नाते संघ-कार्य को बल देते रहे।

1951 में जब डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई, तभी उनका राजनीति में प्रवेश हुआ। देश की अखंडता के लिए कश्मीर आंदोलन, गोवा मुक्ति आंदोलन तथा बेरुबाडी के हस्तांतरण के विरुद्ध आंदोलन चलाकर उन्होंने भारत की राजनीति में स्वतंत्रता संग्राम के मुद्दों को जीवित रखा। भारत की अखंडता के लिए उनका पूरा जीवन लगा।

देश के लोकतंत्र को सबल विपक्ष की आवश्यकता थी; प्रथम तीन लोकसभा चुनावों के दौरान भारतीय जनसंघ एक ताकतवर विपक्षी दल के रूप में उभरा। वह विपक्ष कालांतर में विकल्प बन सके, इसकी उन्होंने संपूर्ण तैयारी की।

केवल तंत्र ही नहीं, मंत्र का भी विकल्प आवश्यक था। विदेशी वादों के स्थान पर उन्होंने एकात्म मानववाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं भारतीयकरण का आह्वान किया। 1951 से 1967 तक वे भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे। 1968 में उन्हें अध्यक्ष का दायित्व मिला। अचानक उनकी हत्या कर दी गई। उनके द्वारा विकसित किया गया दल 'भारतीय जनता पार्टी' ही देश में राजनैतिक विकल्प बना।

"हमने किसी संप्रदाय या वर्ग की सेवा का नहीं, बल्कि संपूर्ण राष्ट्र की सेवा का व्रत लिया है। सभी देशवासी हमारे बांधव हैं। जब तक हम इन सभी बंधुओं को भारत माता के सपूत होने का सच्चा गौरव प्रदान नहीं करा देंगे, हम चुप नहीं बैठेंगे। हम भारत माता को सही अर्थों में सुजलां, सुफलां बनाकर रहेंगे। यह दशप्रहरणधारिणी दुर्गा बनकर असुरों का संहार करेगी; लक्ष्मी बनकर जन-जन को समृद्धि देगी और सरस्वती बनकर अज्ञानांधकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाएगी। हिंद महासागर और हिमालय से परिवेष्टित भरत खंड में जब तक एकरसता, कर्मठता, संपन्नता, ज्ञानवता, सुख और शक्ति की सप्तजाह्नवी का पुण्यप्रवाह नहीं ला पाते, हमारा भागीरथ तप पूरा नहीं होगा। इस प्रयास में ब्रह्मा, विष्णु और महेश सभी हमारे सहायक होंगे। विजय का विश्वास है। तपस्या का निश्चय लेकर चलें। वंदे मातरम्!"

"संन्यास का अर्थ संसार को छोडकर वन में तपस्या करना नहीं है। मैंने कर्म-संन्यास लिया है, जिसका अर्थ कर्म छोडकर नहीं। कर्म करना, देश और धर्म के कर्म करना, जो सत्य है तथा मनुष्य को कर्मफल-बंधन में नहीं बाँधते।"

"राजनीतिक स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए राष्ट्र को सैनिक दृष्टि से संरक्षणक्षम करना आवश्यक है। इस हेतु हम युद्ध सामग्री के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं रह सकते। यह निर्भरता एक ओर तो हमें दूसरों के कृपाकांक्षी बना देगी, दूसरी ओर युद्ध-सामग्री पैदा करने वाले राष्ट्रों के मन में, अपने इस सामग्री के बाजार बनाए रखने और बढाए जाने के लिए सदैव ही युद्ध की विभीषिका निर्माण करने का मोह उत्पन्न करेगी। यदि भारत जैसा सामरिक महत्व की स्थिति वाला देश सैनिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो जाए तो विश्व की शांति को भंग करने की संभावनाएँ भी कम हो जाएंगी।"

"लोक-राज्य तभी सफल होगा, जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी को समझकर उसका निर्वाह करेगा। राज्य को चलाने की जिम्मेदारी उसकी है, यह समझकर समाज अधिक संयमी होता जाएगा। जनता समय-समय पर अपने प्रतिनिधि के रूप में भिन्न-भिन्न दलों को चुनती है। यदि जनता जिम्मेदार हो तो दल कभी संयम-शून्य नहीं होंगे। इसके लिए आवश्यक है कि जनता को सुसंस्कृत किया जाए। इस कार्य को करने वाले व्यक्ति राज्य-मोह से दूर रहें।"

"सामंजस्य और समन्वय की मिली-जुली भावना पर लोकतंत्र आधारित है और इस भावना के लिए सहिष्णुता की आवश्यकता होती है। इसके अभाव में लोकतंत्रीय व्यवस्थाएँ प्राणहीन हैं। भारतीय संस्कृति का मूल आधार सहिष्णुता है। इसी से जनता को जानने और समझने की शक्ति प्राप्त होती है। जो उनकी आत्मा के स्वर को पहचानकर उनके अनुरूप अपने क्रिया-कलापों को ढाल सकता है, वास्तव में वही लोकतंत्रीय शासन है।"

"भारतीय चेतना की प्रकृति लोकतंत्रीय है। यद्यपि राजनीति में प्रजातंत्र का योगदान स्पष्ट है, तथापि आर्थिक क्षेत्र में भी लोकतंत्र अपने पैर पसार रहा है। जिस प्रकार प्रजा के हाथ में राजनीतिक शक्ति का विकेंद्रीकरण कर शासन-व्यवस्था का संचालन किया जाता है, उसी प्रकार आर्थिक शक्ति का विकेंद्रीकरण करके प्रजा द्वारा अर्थ-व्यवस्था का निर्माण और संचालन होना चाहिए।"

"हमारा आर्थिक कार्यक्रम प्रजातंत्र का संरक्षक एवं पोषक होना चाहिए। राष्ट्र की शासन व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति का सहभागी बनाना ही प्रजातंत्र का उद्देश्य है। इसके लिए चुनाव की प्रणाली साधन के रूप में अपनाई गई है। चुनाव से प्रजातंत्र प्रतिनिधितंत्र का रूप धारण कर लेता है।"

"राष्ट्र एक जीवमान इकाई है। वर्षों-शताब्दियों लंबे कालखंड में इसका विकास होता है। किसी निश्चित भू-भाग में निवास करने वाला मानव समुदाय जब उस भूमि के साथ तादात्म्य का अनुभव करने लगता है, जीवन के विशिष्ट गुणों को आचरित करता हुआ समान परंपरा और महत्वाकांक्षाओं से युक्त होता है, सुख-दुःख की समान स्मृतियाँ और शत्रु-मित्र की समान अनुभूतियाँ प्राप्त कर परस्पर हित संबंधों में ग्रथित होता है, संगठित होकर अपने श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों की स्थापना के लिए सचेष्ट होता है, और इस परंपरा का निर्वाह करने वाले तथा उसे अधिकाधिक तेजस्वी बनाने के लिए महान् तप, त्याग, परिश्रम करने वाले महापुरुषों की शृंखला निर्माण होती है, तब पृथ्वी के अन्य मानव समुदायों से भिन्न एक सांस्कृतिक जीवन प्रकट होता है। इस भावात्मक स्वरूप को ही राष्ट्र कहा जाता है।"

“प्रत्येक व्यक्ति ‘मैं’ और ‘मेरा’ विचार त्याग कर ‘हम’ और ‘हमारा’ विचार करे। अन्यथा कई बार देखा जाता है कि व्यक्ति कहता है कि राष्ट्र के लिए जान हाजिर है और जीवन में सब कार्य व्यक्ति का विचार कर ही करता रहता है। इसमें न व्यक्ति का भला है और न ही समष्टि का। वास्तव में समष्टि के लिए कार्य करना यानी धर्माचरण करने की शिक्षा होती है। उसमें भी संस्कार डालने होते हैं। इन संस्कारों को प्रदान करना ही राष्ट्र का संगठन करना है।”

“हमें अपने राष्ट्र के ‘विराट्’ को जाग्रत् करने का काम करना है। अपने प्राचीन के प्रति गौरव का भाव लेकर, वर्तमान का यथार्थवादी आकलन कर और भविष्य की महत्वाकांक्षा लेकर हम इस कार्य से जुट जाएँ। हम भारत को न तो किसी पुराने जमाने की प्रतिच्छाया बनाना चाहते हैं और न रूस या अमेरिका की प्रतिकृति ।”

“शिक्षा का माध्यम स्वभाषा ही हो सकती है। भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं, वह स्वयं ही एक अभिव्यक्ति है। भाषा के एक-एक शब्द, वाक्य-रचना, मुहावरों आदि के पीछे समाज के जीवन की अनुभूतियाँ, राष्ट्र की घटनाओं का इतिहास छिपा हुआ है। फिर स्वभाषा व्यक्ति को अलग-अलग प्रकोष्ठों में नहीं बाँटती।

“धर्म का संबंध केवल मंदिर, मसजिद से नहीं है। उपासना धर्म का एक अंग हो सकती है; किंतु धर्म तो व्यापक है। मंदिर, मसजिद लोगों में धर्माचरण की शिक्षा का प्रभावी माध्यम भी रहे हैं, किंतु जिस प्रकार विद्यालय विद्या नहीं है वैसे ही मंदिर धर्म से भिन्न है। हो सकता है कोई बालक रोज पाठशाला जाए, फिर भी अनपढ रह जाए। उसी प्रकार प्रति दिन मसजिद या मंदिर में जाने वाला व्यक्ति भी धर्महीन हो सकता है। मंदिर, मसजिद में जाना-मत, मजहब, रिलीजन है। रिलीजन को बहुत बार लोगों ने धर्म मान लिया।” “रिलीजन यानी मत, पंथ, मजहब, वह धर्म नहीं। धर्म तो एक व्यापक चीज, यह जीवन के सभी पहलुओं से संबंध रखने वाली चीज है — उससे समाज की धारणा होती है। उससे आगे बढें तो सृष्टि की धारणा होती है। यह धारणा करने वाली जो चीज है, वह धर्म है।”

“स्वतंत्रता समानता तथा बन्धुता एक ही तत्व में अन्तर्निहित है, जिसे ‘आत्मीयता’ कहते हैं। मानव की आध्यात्मिक चेतना ही उसे समग्रता एवं पूरकता की दृष्टि देती है, इस दृष्टि का चेतन तत्व हैं, ‘आत्मीयता’। हम किसी का पूरक बन कर उस पर अहसान नहीं करते वरन् अपने आत्मीयजन के यहयोग का सुख प्राप्त करते हैं। सहानुभूति मानवता का गुण है, आत्मीयता के कारण सहानुभूति होती है।”

विश्व का ज्ञान और आज तक की सम्पूर्ण परम्परा के आधार पर हम ऐसे भारत का निर्मान करेंगे, जो हमारे पूर्वजों के भारत से भी अधिक गौरवशाली होगा। जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्ति का विकास करता हुआ सम्पूर्ण मानवता ही नहीं अपितु सृष्टि के साथ एकात्मता का साक्षात्कार कर "नर से नारायण" बनने में समर्थ हो सकेगा। यह हमारी संस्कृति का शाश्वत, दैवी और प्रवहमान् रूप है। चौराहे पर खड़े विश्व-मानव के लिये यही हमारा दिग्दर्शन है। भगवान हमें शक्ति दें कि हम इस कार्य में सफल हों, यही प्रार्थना है।

"हमारे यहां धर्म के नियमों और उसकी व्याख्या का अधिकार राजा को कभी नहीं दिया गया। तब यह विचार आता है कि आखिर समाज जीवन में प्रभुसत्ता किसके पास रहेगी? हमारे यहां यद्यपि शासक को विष्णु का अवतार माना गया..... तो प्रजा भी जनता जनार्दन है। राजा ही कर्ताधर्ता है, वह कोई भूल नहीं करता। (King does no wrong) ऐसी बात हम लोगों ने नही मानी। हमारी मान्यता और पद्धति के अनुरूप राज्याभिषेक के समय राजा तीन बार घोषणा करता है 'अदण्ड्योस्मी' उसी समय राजपुरोहित पालशदण्ड उसके सर पर स्पर्श प्रहार करते हुये कहता है, धर्म ही तेरे लिये दण्ड (धर्म दण्डयोसी) अर्थात् प्रभुसत्ता 'धर्म' की है, धर्म ही राजा पर शासन करेगा।"

.....भारतीय राज्य का आदर्श 'धर्म राज्य' रहा है। यह एक असाम्प्रदायिक राज्य है। सभी पंथों एवं उपासना पद्धतियों के प्रति सहिष्णुता एवं समादर का भाव भारतीय राज्य का आवश्यक गुण है।..... धर्म राज्य किसी व्यक्ति या संस्था को सर्वसत्तासम्पन्न नहीं मानता। सभी नियम और कर्तव्यों से बंधे हैं। कार्यपालिका, विधायिका और जनता सबके अधिकार 'धर्माधीन' हैं। स्वैराचरण की कहीं अनुमति नहीं है। अंग्रेजी का Rule of Law (विधि के अनुसार शासन) 'धर्म राज्य' की कल्पना को व्यक्त करने वाला निकटतम शब्द है। निरंकुश और अधिनायकवादी प्रवृत्तियों को रोकने तथा लोकतंत्र को स्वच्छंदता में विकृत होने बचाने में 'धर्मराज्य' ही समर्थ है।

समाज व राष्ट्र स्वयंभू इकाई है। राष्ट्र के आगे सृष्टि तथा सृष्टि को व्याप्त करने वाली परमेष्टि। इन सबकी अलग-अलग सत्तायें हैं, जैसे कि व्यक्ति की भी होती है। इन सत्ताओं का अलग-अलग रुप न पहिचानते हुये, किसी एक को ही पूर्ण मानकर विचार करने वाले 'व्यक्तिवादी' या 'परमात्मावादी' लोग एकांगी अवधारणाओं वाले हैं। (इसी प्रकार 'विश्ववादी' या 'परमात्मावादी' लोगों के बारे में भी कहा जा सकता है। हम समग्रता अथवा एकात्मवादी हैं।)

हमारी राष्ट्रीयता का आधार 'भारत माता' है, केवल भारत नहीं। माता शब्द हटा दीजिये तो भारत केवल जमीन का एक टुकड़ा मात्र रह जायेगा। इस भूमि का और हमारा ममत्व जब आता है, तब माता वाला सम्बन्ध जुड़ता है। कोई भी भूमि तब तक देश नहीं कहला सकती, जब तक कि उसमें किसी जाति का मातृक ममत्व, याने ऐसा ममत्व जैसा पुत्र का माता के प्रति होता है, न हो। वही देशभक्ति है, तथापि देश भक्ति का मतलब जमीन के टुकड़े के साथ प्रेम होना मात्र नहीं है, अन्यथा कई पशु-पक्षी भी तो अपने घर से बहुत प्रेम करते हैं। सांप अपना बिल नहीं छोड़ता, शेर मांद में ही निवास करता है, पक्षी अपने घोसले में रोज लौट आते हैं किन्तु वे देशभक्त हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। मानव भी जहां रहता है, वहां से उसका कुछ न कुछ लगाव हो ही जाता है, फिर भी इतने मात्र से देशभक्ति नहीं आती। उन लोगों का प्रेम ही देशभक्ति कही जायेगी जो देश में एक जन के नाते सम्बद्ध हैं। पुत्र रूप एक जन और माता रूप भूमि के मिलन से ही देश की सृष्टि होती हे। वही देशभक्ति है, जो अमर है।

धर्म धारणा से है। किसी भी वस्तु, व्यक्ति या प्रकृति की धारणा जिन तत्वों से होती है, वही उसका धर्म है, जैसे अग्नि का धर्मा ऊष्णता है।

राष्ट्रीयत्व के विकास में स्वदेश का महत्व सबसे अधिक होता है। अतः उस युग में स्वतः ही अपनी सम्पूर्ण मातृभूमि के दर्शन का प्रयत्न किया गया। किसी भी मत या सम्प्रदाय के मानने वाले क्यों न हों, उनके सम्मुख हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक आसिन्धु-सिन्धुपर्यन्त भारत का चित्र रहता था। प्रत्येक सम्प्रदाय के आचार्य ने यही प्रयत्न किया कि उसके सम्प्रदाय के लोग सम्पूर्ण भारत को पवित्र मानें। इतना ही नहीं, भारत की इस एकता का प्रत्यक्ष ज्ञान कर सकें इसलिये प्रत्येक सम्प्रदाय में तीर्थयात्रा की पद्धति प्रचलित हुयी। ये तीर्थ तो भारत के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक बिखरे हुये हैं। सूर्य के बारह मंदिर, गणापत्यों के द्वादश विनायक, शैवों के अट्ठारह ज्योतिर्लिंग, शाक्तो के इक्यावन शक्ति क्षेत्र तथा वैष्णवों के अगणित तीर्थ क्षेत्र सम्पूर्ण भारत में बिखरे पड़े हैं। इन विस्तृत पुण्य क्षेत्रों के होते हुये, प्रान्तीयता के संकुचित भावना के प्रवेश असंभव ही था। मर्यादा पुरुषोत्तम राम की दक्षिण यात्रा ने उत्तर-दक्षिण का जो गठबंधन किया वह जनसाधारण के लिये आचार विचार और भावना में अटूट हो गया। महाभारत काल ने इसी एकता को दिखाने के लिये एक बार नहीं, दो-दो, तीन-तीन बार भारत का एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक अत्यंत भावुकतापूर्ण वर्णन किया है। पुराणकारों ने भारत की भूमि के कण-कण की पवित्रता का पुनः पुनः गुणगान किया है।

जैसे राष्ट्र का अवलम्ब चिति होती है, वैसे ही जिस शक्ति से राष्ट्र की धारणा होती है, उसे विराट कहते हैं। विराट राष्ट्र की वह कर्म शक्ति है, जो चिति से जागृत और संगठित होती है। विराट का राष्ट्र जीवन में वही स्थान है जो शरीर में प्राण का। प्राण से ही सभी इन्द्रियों को शक्ति मिलती है, बुद्धि का चैतन्य प्राप्त होता है और आत्मा शरीरस्थ रहती है। राष्ट्र में विराट के सबल होने पर ही उसके भिन्न-भिन्न अवयव अर्थात् संस्थायें सक्षम और समर्थ होती है। विराट के आधार पर ही प्रजातंत्र सफल होता है और बलशाली बनाता है।.... हम विराट को जागृत करें।

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी विशेष प्रकृति होती है, जो ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक कारणों का परिणाम नहीं अपितु जन्मजात है। इसे चिति कहते हैं। राष्ट्र का उदयावपात चिति के अनुकूल अथवा प्रतिकूल व्यवहार पर निर्भर है। चिति स्वयं को अभिव्यक्ति करने तथा व्यक्तियों को पुरुषार्थ के सम्पादन की सुविधा प्राप्त कराने के लिये अनेक संस्थाओं को जन्म देती हैं।..... जाति, वर्ण, पंचायत, विवाह, सम्पत्ति, राज्य आदि इस प्रकार की संस्थायें हैं।

मानवता की एकता का आधार आध्यात्म होगा। आध्यात्म केवल भारत व हिन्दू समाज के पास है। मानव एकता के निर्माण व संरक्षण के लिये इस सिद्धांत की रक्षा करना आवश्यक है। एकता के आधार की रक्षा के लिये हिन्दू समाज के संगठन का कार्य अपनाया है।

भारतीय संस्कृति का सार ब्रह्माण्ड में विद्यमान विविधता में मूलभूत एकता को स्वीकार करता है। अति प्राचीनकाल में भारत के ऋषि-मुनियों ने 'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। जो सम्पूर्ण में है, वही उसके अंश में है। अर्थात् 'अंश' तथा 'पूर्ण' एक ही पदार्थ के द्योतक हैं। ... भारतीय दर्शन पर आधारित समाज रचना ... आधुनिक द्वन्द्वों को सुलझाने में समर्थ है।

शक्ति असंयमित
व्यवहार में नहीं
बल्कि अच्छी तरह
व्यवस्थित कार्रवाई
में निहित है

Integral Humanism

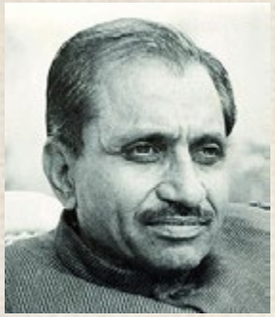

Introduction

The childhood of Pt. Deendayal Upadhyaya was spent in very difficult circumstances, even then he always excelled as a brilliant student. When India's struggle for freedom was covered under the shadow of two-nation theory, at that time in 1942 he started his public life through Rashtriya Swayamsevak Sangh. He engaged himself in Sangh-work as an excellent organizer, writer, journalist and orator.

When Bharatiya Jansangh was founded in the leadership of Dr. Syama Prasad Mookerjee in 1951, at that time he entered into the politics. By organising Kashmir movement, Goa liberation movement and movement against transfer of Berubari he kept the issues of freedom movement alive in the Indian politics. He gave his entire life for the integration of India.

The democracy of the country required a capable Opposition; Bharatiya Jansangh emerged as a strong Opposition in the first three Lok Sabha elections. He made full preparations so that with time this Opposition becomes alternative.

Not only mechanism but alternative ideas were also necessary. In place of foreign 'isms' he called for Integral Humanism, cultural nationalism and Indianization. From 1951 to 1967 he remained the general secretary of Bharatiya Janshangh. He got the responsibility as President in 1968. Suddenly he was murdered. Only the party, Bharatiya Janata Party, developed by him became the political alternative.

Materialism and spiritualism are neither contradictory nor separate from each other. Spirituaism is a point of view of life from which we look at a problems. If spiritualism can give a true definition of the universe there is no reason it should not give us a solution to all problems of the world. India as not it has thought only of the mataphysical world, it has thought of material wealth.

No fundamental rights, whether related to property or other things, are eternal. They are all dependent upon the interest of society. In fact these rights are given to the individual in order that he may perform his social duties. A soldier is given weapons because his duty is to protect society. If he does not do his duty he loses the right to bear weapons. Similarly the right to property.

If one has to understand the soul of Bharat one must not look at this country from the political or economic angle but from the cultural point of view. 'Bharatiyata' (nationhood of Bharat) can manifest itself not through politics but through culture. If we have anything that we can teach the world, it is the feeling of cultural tolerance and a life dedicated to duty.

If a vote for everyone is the touch-stone of political democracy, work for everyone is a measure of economic democracy. This right to work does not mean slave labour as in communist countries. Work should not only give a means of livelihood to a person but it should be of the choice of that person. If for doing that work the worker does not get a proper share in the national income, he would. be considered unemployed. From this point of view a minimum wage, a just system of distridution and some sort od social security are necessary.

If either of the two—an ideal and a motherland—is not there then there is no nation.

The machine was developed to increase man's productivity and decrease his labour. The machine is an aid of man, not a competitor. But when human labour became a commodity with a price on it, the machine became man's competitor. This is the defect of the capitalist's point of view. If machine replaces man and man dies of starvation, the purpose for which the machine was developed would be defeated. But the inanimate machine is not responsible for this. This defect belongs to a thoughtless economy. We must take into account the limitation of the machine when we decide upon its use.

People should also realise that a vote is not an instrument of expressing gratefulness to any candidate but a mandate to carry out their wishes.

The outlook of Bharatiya *Sanskriti* is integral. It accepts the seeming differences among various entities and aspects of life, but it seeks at the same time to discover the unity underlying them — and takes an integrated view of the whole scene, In the manifold activities of the world, Bharatiya *Sanskriti* sees inter-dependence, cooperation and concord rather than conflict, contradiction and discord. Its perspective is all-comprehensive, not partial. It wishes and works for the well-being of all.

Dharma really means those eternal principles which sustain an entity — individual or corporate — and abiding by which, that entity can achieve material prosperity in this world and spiritual salvation in the next. The basic attributes of *Dharma* are eternal and immutable.

Society is not just a conglomeration of individuals. It is a living entity by itself. A society which has filial devotion to its own land and a characteristic genius of its own, constitutes a nation.

The rise and fall of nations depends very much on how far their conduct has been in conformity with their own genius. But despite these variegated characteristics of theirs, different nations can play a complementary role in the building up of world unity.

For individuals as well as for nations, freedom is a natural urge. In bondage there is neither happiness nor peace. Along with political freedom economic and social emancipation is also necessary. Non-interference by the state in the natural interests of the individual and society constitutes political freedom. Economic freedom lies in *Artha* not proving an impediment positive or negative form man's progress. Lastly a condition in which society contributes to the individual's natural progress, rather than restricts it, is social freedom.

Scarcity and abundance of the wealth, degrade the Dharma. In both circumstances, economic independence is curtailed.

The ideal of the Indian State has been *Dharma Rajya*. Tolerance of and respect for all faiths and creeds is an essential feature of the Indian State. Freedom of worship and conscience is guaranteed to all and the state does not discriminate against any one on grounds of religion either in the formulation of policy or in its implementation.

Dharma Rajya does not recognise any individual or body as sovereign. Every individual is subject to certain obligations and regulations. Rights of the executive, of the legislature, as well as of the people, are determined and regulated by *Dharma*.

Dharma Rajya ensures on the one hand a curb on arbitrariness and totalitarianism, and on the other it prevents democracy from degenerating into mobocracy. While other concepts of state are right-oriented, the Indian concept of *Dharma Rajya* is duty-oriented. Naturally, therefore, there is no scope here for rights

being trampled upon or for any hankering after unlimited rights.

In a *Dharma Rajya* people's rights are inviolate. It is the duty of the people to guard these rights of theirs zealously because it is through the exercise of these rights that they can fulfil their *Dharma*.

That constitution which sustains the nation is in tune with *Dharma. Dharma* sustains the nation. Hence we have always given prime importance to *Dharma,* which is considered. All other entities, institutions or authorities derive their power from *Dhrma* and are subordinate to it.

Democracy, or people's rule (*Lok-tantra*) is a means for upholding *Loka-dhikar* (people's rights) and promoting *Lok-Kartavya* (people's duty). Democracy has to be established not only in the political field but in the economic and social fields as well. Democracy is indivisible. It cannot be viewed in fragments.

Tolerance, dignity of the individual and a feeling of identification with the *demos*, the people — these are the essentials of democracy. Without these, the mere paraphernalia of democracy would be purposeless. And if these essential are there, the institutional form can vary from time to time and from country to country.

The individual occupies a pivotal position in our system, According to the principle of *'Yat pinde tad brahmande'* (what is in microcosm is also in macrocosm), individual is the representative and chief instrument of society. Material wealth is a means to man's happiness, and not an end in itself. But a system which is based on the assumption of a mass-man and fails to take into account the living man having an individuality characteristically his own is not adequate. Inadequate also is a system which looks just at one attribute of man and fails to take a comprehensive view of him as an organic being comprising of *Shareer, Mana, Buddhi and Atma* having a number of urges requiring to be fulfilled by the *Purusharthas*. Our ideal is the integral man, who has the potential to share simultaneously innumerous individual and corporate entities. Integral Humanism is the corner-stone upon which our entire system needs to be built.

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् *i.e.* body is truly the primary instrument to discharge the responsibilities that *Dharma* enjoins. The fundamental difference between our positions and that of the West is that, where as they have regarded body and the satisfaction of its desires as the aim, we regard the body as an instrument for achieving our aims. We have recognised the importance of the body only in this light.

Here in Bharat, we have placed before ourselves the ideal of the fourfold responsibilities of catering to the needs of body, mind, intellect and soul with a view to achieve the integrated progress of man. *Dharma, Artha. Kama and Moksha* are the four kinds of *purusharthas* (पुरुषार्थ) —human efforts. *Purushartha* means efforts which befit a man. The longings for *Dharma, Artha, Kama and Mosksha* are inborn in man, and satisfaction of these gives him joy (आनंद).

A person who engages in action, while remaining unattached to its fruits, is said to achieve *moksha* inevitably and earlier.

The ideals of The nation constitute *Chiti*, which is analogous to the soul of an individual. It requires some effort to comprehend *Chiti*. The laws that help manifest and maintain *Chiti* of a nation are termed *Dharma* of that nation. Hence it is this '*Dharma*' that is supreme.

Dharma is the repository of the nation's soul. If *Dharma* is destroyed, the nation perishes. Anyone who abandons *Dharma*, betrays the nation.

Dharma is not confined to temples or mosques. Worship of God is only a part of the *Dharma. Dharmas* is much wider. In the past, temples have served as effective medium to educate people in their *Dharma.*

A Unitary State does not mean concentration of all powers in the Centre, just as the head of the family does not have all the powers with him even though all the transactions are carried out in his name.

Dharma Rajya does not mean a theocratic State. Dharma Rajya accepts the importance of religion for peace, happiness and progress of an individual. Therefore the State has the responsibility to mainlain an atmosphere in which every individual can follow the religion of his choice and live in peace. The freedom to follow one's own religion necessarily requires tolerence for other religions. We know that every kind of freedom has its inherent limits.

Where other person's freedom is likely to be encroached upon, my freedom ends. The freedom of both parties has to be ensured. Similarly, every religion has the freedom to exist. But this freedom extends only as far as it does not encroach upon the religion of others.

Independence is *Dharma* of every nation. It is the duty of every citizen to preserve independence, and to strive for regaining it when it is lost.

A democratic government *jana Rasjya,* must also be rooted in *Dharma* i.e. *Dharma Yajya.* In the definition of Democracy viz. "Goverment of the people, by the people and for the people" 'of' stands for independence, 'by' stands for democracy, and 'for' indicates *Dharma.* Therefore the true democracy is only where there is freedom as well as *Dharma.* धर्मराज्य encompasses all these concepts.

The nearest equivalent English term for *Dharma can be* "innate law". Since *'Dharma'* is supreme, our ideal of the State has been *"Dharma Rajya".* The king is supposed to protect *Dharma.*

The universe is sustained because He acts according to *Dharma.* The king was supposed to be a symbol of Vishnu, in as much as he was the chief protector of *Dharma Rajya.*

Our Economic System

The objectives of our economy should be :-

1. An assurance of minimum standard of living to every individual and preparedness for the defence of the nation.
2. Further increase above this minimum standard of living whereby the individual and the nation acquire the means to contribute to the world progress o the basis of its own Chiti.
3. To provide meaningful employment to every able bodied citizen, by which the above two objectives can be realised and to avoid waste and extravagance in utilising natural resources.
4. To develop machines suited to Bharatiya conditions (Bharatiya Technology), taking note of the availability and nature of the various factors of production (Seven Ms').
5. This system must help, and not disregard the human being, the individual. it must protect the cultural and other values of life. This is a requirement which cannot be violated except at the risk of a great peril.
6. The ownership, state, private or any other form, of various industries must be decided on a pragmatic and practical basis.

In substance, mere individualism makes us slaves of capitalists and mere socialism destroys the individuality of men. India needs a synthesis of these two ideologies. This is what will be in accordance with Indian thought. In this way we shall be able to bring to fruition our enthusiasm for reconstruction, while preserving our eternal values and also protect ourselves from un-Indian elements.

We have to undertake the task of awakening our nation's *Virat*. Let us start carrying on this task of awakening the *Virat* of the nation with a high sense of pride in our hoary glorious past, taking a realistic assessment of the present and having a great ambition for the future.

With the support of Universal knowledge and our heritage, we shall create a Bharat which will excel all its past glories, and will enable every citizen in its fold to develop his manifold latent potentialities and to achieve. Through a sense of unity with the entire creation, a state even higher than that of a complete human being. It is a state in which *Nar* (Man) becomes *Narayan* (God). This is the eternal and continuous divine form of our culture. This is our message to humanity at crossroads. May God give us the strength to succeed in this task.

Our scriptures tell us that, To follow the Vedas, to act according to the fundamental principles of our scriptures, to entertain truthful and pious thoughts and thus to develop the virtues

in us is *Dharma.* To act according to whatever is necessary and conducive to the realization of the eternal truth, the Soul within us, is also *Dharma.*

Integral Humanism believes in the plurality in the midst of a single mankind in the form of different national personalities. It simultaneously believes that internationalism is the outward manifestation of the development of human consciousness from the earlier stage of nationalism.

''If the soul of the society weakens, then all the different limbs of the society will grow feeble and ineffective. Any particular isntitution may be rendered useless or even harmful.

That constitution which sustains the nation is in tune with *Dharma. Dharma* sustains the nation. Hence we have always given prime importance to *Dharma,* which is considered. All other entities, institutions or authorities derive their power from *Dharma* and are subordinate to it.

Hegel put forward the principles of thesis, anti-thesis and synthesis; Karl Marx used this principle as a basis and presented his analysis of history and economics; Darwin considered the principle of survival of the fittest as the sole basis of life; but we in this country saw the basic unity of all life.

The first characteristic of Bharatiya culture is that it looks upon life as an integrated whole. It has an integrated view-point. To think of parts may be proper for a specialist but it is not useful from the practical standpoint. The confusion in the West arises primarily from its tendency to think of life in sections and then to attempt to put them together by patch-work.

If culture does not form the basis of independence then the political movement for independence would degenerate into a scramble by selfish and power-seeking persons. Independence can be meaningful only if it becomes an instrument for the expression of our culture. Such expression Will not only contribute to our progress but the effort required will also give us the experience of joy.

Whatever I earn, consume to nourish myself and my family. I belong to Society, hence, I have a duty to the society that sustains me and my family. If i care for the society, the society shall in turn care for me. Similarly a society is a part of the entire humanity. Hence all societies should work in the larger interset of humanity as a whole. Humanity in turn is a part of Nature. Nature provedes mankind with all the means and resources for its nourishment and protection. Nature itself is a part of God. This is how we all are inalienably united with the Ultimate. This is the essence of Hindu thought, Bhartiya thought. Deendayalji named this thought only integral Humanism.

A Nation is a group
of persons who live with
'A Goal', 'An Ideal',
'A Mission' and look upon
a particular piece of land as the
Motherland. If either
of the two –The Ideal and
The Motherland–is missing,
then there is no nation.

India's progress is dependent on how quickly we can free our nation from the clutches of poverty and provide every Indian a life of dignity, opportunity and aspiration.